9

ज्ञानी जीव निवार भरमतम

ज्ञानी जीव निवार भरमतम,
वस्तुस्वरूप विचारत ऐसैं ।।टेक।।

सुत तिय बंधु धनादि प्रगट पर, ये मुझतैं हैं भिन्नप्रदेशैं।
इनकी परनति है इन आश्रित, जो इन भाव परनवैं वैसे ।।१।। ज्ञानी.।।

देह अचेतन चेतन मैं, इन परनति होय एक सी कैसैं।
पूरनगलन स्वभाव धरै तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसैं।।२।। ज्ञानी.।।

पर परिनमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा रागरुष द्वंद भयेसैं।
नसै ज्ञान निज फँसै बंधमें, मुक्त होय समभाव लयेसैं ।।३।। ज्ञानी.।।

विषयचाह दवदाह नसै नहिं, विन निज सुधा सिंधुमें पैसैं।
अब जिनवैन सुने श्रवननतैं, मिटे विभाव करूं विधि तैसैं ।।४।। ज्ञानी.।।

ऐसो अवसर कठिन पाय अब, निजहितहेत विलम्ब करेसैं।
पछताओ बहु होय सयाने चेतन, 'दौल' छुटो भव भयसैं ।।५।। ज्ञानी.।।

ज्ञानी जीव अपने भ्रमरूपी अन्धकार को दूर करके वस्तु स्वरूप का विचार इस प्रकार करते हैं कि –

पुत्र, स्त्री, भाई, धन आदि पदार्थ तो स्पष्टतया पर हैं, क्योंकि इनके प्रदेश ही मुझसे भिन्न हैं। इन पदार्थों की परिणति इनके स्वयं के आश्रित है अर्थात ये सब अपने जैसे भाव करते हैं वैसे ही परिणमित होते हैं।

यह शरीर तो अचेतन है और मैं चेतन तत्त्व हूँ। चेतन और अचेतन दोनों की परिणति एक कैसे हो सकती है? यह शरीर तो पूरन–गलन स्वभाव को धारण करता है और मैं आकाश की भाँति विशाल, स्थिर और निर्मल तत्त्व हूँ।

हे जीव! पर पदार्थों का परिणमन न इष्ट है और न अनिष्ट है, अत: उसमें राग–द्वेष रूप झगड़ा करना व्यर्थ है क्योंकि यह करने से ज्ञान का नाश होता है और जीव कर्मों के बन्धनों में फँस जाता है। अत: यदि यह जीव इनको छोड़कर समता भाव में लीन हो जाये, तो इसे मुक्ति की प्राप्ति हो जाये।

अहो! यह विषय चाह रूपी भयंकर अग्नि अपने ज्ञानरूपी अमृतसागर में जमे बिना शांत नहीं हो सकती है। भाग्योदय से मैंने अब जिनवाणी कानों से सुनी है, अत: मुझे अब ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे ये समस्त विभाव नष्ट हो जाये।

कविवर दौलतरामजी कहते हैं कि, हे सयाने चेतन! अब यदि ऐसा दुर्लभ अवसर पाकर भी तूने आत्मकल्याण के कार्य में विलम्ब कर दिया तो तुझे बहुत पश्चाताप होगा, अत: अब शीघ्र ही इस संसार के भय से मुक्त हो।